वाराणसी (भारत)
अगस्त २८, २००१

सन्देश संख्या ४२
क्रियायोग में ईश्वर प्रणिधान

प्रेम कृत्य नहीं है, आनन्दमय अस्तित्व है, सहज परावस्था है। प्रेम अनुभव की स्थिति नहीं है, निर्मनावस्था है। इसके विपरीत मन की अवस्था तो ईर्ष्या की है, स्वार्थ की है, आत्मकेन्द्रित गतिविधियों की है, आकांक्षा की है, आशंका की है। मन, जो बुद्धि तथा अहम्केन्द्र का खण्ड चैतन्य है, के अन्दर प्रेम प्रस्फुटित हो ही नहीं सकता। मन में तो प्रेम का नाटक होता है, जहाँ वैर सिर्फ ढँक जाता है। वैर पर पर्दा नहीं बल्कि वैर की समाप्ति प्रेम की शुरूआत है। चित्तवृत्ति से बना प्रेम कब वैर बन जायेगा – इसका क्या भरोसा?

अच्छाई के साथ अधिकार का कोई सम्बन्ध नहीं है। अच्छा इन्सान अधिकार नहीं जताता और जो अधिकार जताता है वह अच्छा इन्सान नहीं है। क्रियायोग 'और' का दौर नहीं है – और अधिकार, और शक्ति, और ख्याति, और अनुभव, और माया, और मोह, और विषयवस्तु, और अहम्भाव, और सुख–विलास। क्रियायोग तो विचार से विवेक और फिर वैराग्य तक की यात्रा है। क्रियायोग निपट सांसारिक व्यक्ति को परम साध्य का साक्षात्कार कराता है।

बहुत सारे दूध में एक बूंद जहर डालने से पूरा दूध जहर बन जाता है, परन्तु ढेर सारे जहर में एक बूंद दूध डालने से जहर दूध नहीं बन पाता है। शुद्ध–बुद्धि दूध की तरह नाजुक है, प्रदूषण जहर की तरह भयंकर है। अतः अध्यात्म रूपी दूध की मानसिक प्रदूषण रूपी विष से रक्षा हेतु जागरूक रहो, होशियार रहो। आध्यात्मिक मण्डी के प्रदूषित अध्यात्म से बचो।

सत् शिष्य बनो तो सद्गुरू अवश्य मिलेंगे। शिष्य अगर भय और लोभ से विभ्रान्त रहेगा तो गुरू भी वैसा ही मिलेगा जो डर और लालच के माध्यम से शिष्य का शोषण करेगा, हमेशा उसे दुःख, दुर्दशा और उपद्रव में फँसाये रखेगा।

''गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय ।
बलिहारी गुरू आपकी, गोविन्द दियो दिखाय।।''

गोविन्द अर्थात् निर्मनावस्था, परावस्था, सहजावस्था, स्वरूप, स्वधर्म। इस अवस्था में वासना का विश्लेषण नहीं, वासना के विषय–वस्तु का परिवर्तन भी नहीं, और न ही वासना की व्याख्या होती है। क्रिया–योग से वासना शनैः शनैः विसर्जित होती है, विलीन होती है। जिस विचार से वासना निर्वासित नहीं होती, वह विचार तो विकार है। आध्यात्मिक मण्डी के विचारों की, अवधारणाओं की, पूर्वाग्रहों की, उधारी ज्ञान की खरीद–बिक्री बन्द करो। अब तो समझो, ध्याओ, जानो, जागो और जियो। अब तो आओ सत्य में, सम्यक् में, अनुभूति में, अव्यक्त में। अव्यक्त को व्यक्त किया कि व्यभिचार हुआ। धर्म कथाओं, प्रवचनों आदि के नाम पर यह ढोंग एवं व्यभिचार आए दिन हो रहा है और ऐसे ढोंगियों की संख्या दिनानुदिन बढ़ रही है। चित्तवृत्ति का आध्यात्मिक मनोरंजन बढ़ रहा है, चैतन्य घट रहा है। जागृति खो रही है, जंजीर जकड़ रही है। बोध जा रहा है, बोझ आ रहा है। रूप की चमक–दमक बढ़ती जा रही है, रूपान्तरण का नाम ही नहीं है।

जिस नाम का सुमिरन होता है, वह भगवत्ता के बारे में कुछ भी नहीं कहता। जहाँ सभी सुमिरन सन्नाटा बन जाता है, वहीं उदय होता है – अव्यक्त, अतुलनीय, अभावनीय, ऐश्वर्यमय, आनन्दमय, अखण्ड, अपरिमेय, आश्चर्यमय, परम विस्मयकर, चरम शून्यमय, अनाम–अस्तित्व। यही है क्रियायोग में ईश्वर प्रणिधान।

।। जय सद्गुरू लाहिड़ी महाशय ।।